© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोंण

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
मर्यादा देवी कन्या पी0जी0 कालेज,
बिरगापुर, हनुमानगंज, इलाहाबाद।

सारांश – भाषा कुछ अक्षरों का एक ऐसा शब्द है जिसके अन्तर्गत अनन्त सामर्थ्य समायी हुई है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अपने विचारों का आदान प्रदान आसानी से कर सकता है तथा भाषा मनुष्य को मनुष्य होने का एहसास कराती है क्योंकि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो भाषा का प्रयोग अपने विचारों, भावों व अनुभूतियों को प्रकट करने के लिए करता है। भाषा–भाषा होती है चाहे जिस देश की भाषा हो, वो अपने दायित्वों का निर्वाह सदा करती रहती है। परन्तु जैसा कि यह सर्वविदित है कि हर देश की अपनी एक अलग भाषा होती है और वो अपने देश के लोंगो को एक ही सूत्र में बांध कर रखती है। भाषा केवल विचारों के आदान–प्रदान की माध्यम भर नहीं होती बल्कि वो किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान होती है। भाषा परिवर्तित नहीं होती उसके शब्द परिवर्तित होते हैं और शब्दों के आगमन व निगमन में एक लम्बी भाषा प्रक्रिया कार्य करती है। भाषा व समाज एक दूसरे से अटूट रूप से संबन्धित होतें है क्योंकि भाषा समाज को जोड़ने का कार्य करती है तथा समाज भाषा का निर्माण करता है। समाज में ही भाषा का अस्तित्व है तथा भाषा से ही समाज का अस्तित्व है।

मुख्य शब्द– समाज, भाषा, व्यवहार ।

जहां तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के भाषा सम्बन्धि दृष्टिकोण की बात है तो वो बड़ा सशक्त है। यद्यपि उन्होंने भाषा पर अलग से कोई पुस्तक नहीं लिखी परन्तु समय–समय पर पत्र–पत्रिकाओं में प्रकट किये गये उनके विचार तथा आलोचना में व निबन्धों में प्रकट किये गये उनके भाषा सम्बन्धी विचारों से भाषा के सम्बंध में उनकी दृष्टि का हमें पता चलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उन आलोचकों में से थे जिन्होंने आलोचना विधा के साथ–साथ साहित्य के अन्य रूपों को समृद्ध करने का प्रयास किया तथा भाषा को भी उन्होंने एक दृष्टि देनें का प्रयास किया। आ0 शुक्ल ने भाषा के प्रति सामाजिक दृष्टि को ही अपनाया। शुक्ल जी आलोचना व साहित्य से इसीलिए जुड़े थे क्योकि उनको आधुनिक जातियता के निर्माण में भाषा के महत्व व दायित्व से प्रगाढ़ सम्बन्ध का पता था। मात्र–25 वर्ष की अवस्था मे वो नागरी प्रचारिणी पत्रिका के (1909) में सम्पादक बन गये।

आचार्य शुक्ल ने भाषा को वस्तुपरक उपयोगिता के आधार पर देखा। उस भाषा को केवल देशाटन भाषा का दर्जा नहीं बल्कि उससे समाज को मिलने वाली शक्ति साहित्यिक सौन्दर्य उसके अर्थ गौरव तथा उसके अन्वेषण के दायित्वों का भी अनुभव किया। शुक्ल जी के भाषा के प्रति इस दृष्टिकोण में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन का योगदान रहा तथा उन्होंने नवजागरण की पृष्ठभूमि में उनको भाषा के प्रति वैज्ञानिक समझ दी। आ0 शुक्ल हिन्दी के प्रति सदैव संघर्षशील रहे तथा हिन्दी भाषी जनता को जब–जब हिन्दी से विमुख होते देखा उन्होंने अपनी चिन्ता प्रकट कर दी तथा उनकों ऐसा न करने की प्रेरणा दी। वो कहते है– ''हिन्दी के लिए दूसरा समय आया है, पर अभी तक इधर के बहुत से नवशिक्षित लोग उसमें अपनी ठाठ–बात का कोई रंग न देख उसकी सेवा से विमुख है।''[1] शुक्ल जी भाषा को वर्षों से संचित एक सांस्कृतिक निधि के रुप में स्वीकार करते हैं। उनका कहना है– '' अपना भाषा सम्बन्धी अस्तित्व मत खो दो अपने कई सहस्त्र वर्षों के संचित भावों को तिलांजलि मत दो।''[2] भाषा वो है जिसमें किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत समाहित रहती है तो उसको निरन्तर पुष्ट करते रहना चाहिए। यह हर भाषी जनता का मौलिक व अनिवार्य कर्तव्य है। आ0 शुक्ल कहते हैं– ''भाषा ही किसी जाति की सभ्यता को सबसे अलग झलकाती है। यही उसके हृदय के भीतरी कल पूर्जों का पता देती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है।''[3]

शुक्ल जी हिन्दी को निरन्तर विकासमान स्थिति में भी देखते हैं तथा कहते हैं– ''धीरे–धीरे हिन्दी ने अपनी राह निकाल ली।''[4] उन्होनें कहा था– ''भाषा स्वयं अपना मूल किसी जाति विशेष में रखती है अतः भाषा का विकास जाति के राजनैतिक विकास पर निर्भर है।'' देश भाषा की उन्नति के साथ–साथ विचारों की उन्नति की बात आचार्य शुक्ल नागरी प्रचारणी पत्रिका में कहते हैं– ''देश भाषा की जितनी अधिक उन्नति होगी सर्वधारणा के विचार उतने उन्नति होगें।''[5] जिस जलवायु ने हमारे स्वभाव और रंग रुप को रचा उसी ने हमारे शब्दों को भी ये शब्द हमारे जीवन के अंग समान हैं।''[6] आ0 शुक्ल ने भाषा से पृथक होने पर मनुष्य के हर पक्ष पर तो प्रभाव देखा ही उसके गृहस्थ जीवन पर भी उसके प्रभाव हो देखा है ''देश के चिर–पोषित साहित्य के भावों से सहानुभूति न रखने के कारण न जाने कितने अभागे अपनी अर्धांगिनी के अन्तःकरण का सृष्टि सौन्दर्य नहीं देख सकते। बहुतेरे पढ़े लिखों का गृहस्थ जीवन रोचकता रहित फीका और शिथिल हो गया है।''[7]

आ0 रामचन्द्र शुक्ल अन्य प्रमुख विद्वानों की भांति हिन्दी व उर्दू में भेद स्वीकार नही करते है तथा यह मानते हैं कि जैसे हिन्दी भारत में उत्पन्न हुई वैसे ही उर्दू भी भारत में उत्पन्न हुई। उर्दू में अरबी, फारसी शब्दों की भरमार तों बाहर से आने वाले औपनिवेशक तत्वों ने किया जो हिन्दी और उर्दू में भेंद करना चाहतें थें। अतः इस भेद को समाप्त करने के लिए आचार्य शुक्ल उर्दू लेखकों के बारे में कहते हैं– ''अपने भाव, अपने नायक–नायिकाओं और अपनी उपमाएं भारतवर्ष से लिया करें अरब व फारस से नही और श्रृंगार में कफन, खून और खंजर का विभत्स व्यापार छोड़े।''[8] शुक्ल जी का कहना था चाहे उर्दू में लेखन हों चाहे हिन्दी में हों पर

शब्द वही रखने चाहिए जो बहुप्रचलित हों, जो सदा व्यवहार में प्रयुक्त होंते रहें हों– ''गद्य में उन्ही शब्दों कों स्थान देना चाहिए जो सबसे अधिक प्रचलित है।''[9]

आ0 शुक्ल ने केवल गद्य भाषा ही नही समय–समय पर काव्य भाषा के बारे में भी अपनी अवधारणाएं स्पष्ट कर दी है। उनका कहना है कि वो केवल अर्थ ग्रहण न कराये बल्कि उसमें बिम्बात्मकता भी होनी आवश्यक है– ''काव्यों में अर्थग्रहण मात्र से काम नही चलता बिम्बग्रहण अपेक्षित है।''[10] उनका मानना था कि ''काव्य भाषा ऐसी हो जो गोचर अगोचर सभी बातों एवं भावनाओं को चित्रवत उपस्थित करती चले।''[11] भाषा के शुक्ल जी दो रूप स्वीकार करतें है– एक सीधे अर्थ द्वारा बिम्ब ग्रहण कराने वाली भाषा, दूसरी व्यंजना लक्षणा शक्ति के द्वारा बिम्ब ग्रहण कराने वाली ''जहां भाषा अपनी अभिधा शक्ति से योग्य और उत्पन्न अर्थ का चित्रमय प्रस्तुतीकरण करने में अक्षम होती है वहां वह लक्षणा और व्यंजना द्वारा कार्य सम्पन्न कराती है।''[12]

आ0 शुक्ल की भाषा दृष्टि एक विस्तृत दृष्टि थी जिसको उन्होने किसी राष्ट्र को जातीय अस्मिता की पहचान के रूप में देखा। उन्होंने हिन्दी भाषा के उत्थान के लिये सदा प्रयत्न किया क्योंकि वों जानते थें कि भाषा किसी राष्ट्र की भावों व विचारो की संचित निधि होती है। भाषा कियी राष्ट्र को अपनी अलग पहचान दिलवाती है। आ0 शुक्ल आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन के साथ भाषा में परिवर्तन स्वीकार नही करते। ''सामाजिक विकास से भाषा सम्बद्व है, भाषा द्वारा ही मनुष्य अपने प्रयत्न संगठित करता है, अपने ज्ञान को एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाता है इसलिए मानव और प्रकृति का अन्तर्विरोध भाषा के विकास का भी कारण है।''[13]

शुक्ल जी व्यवहारिक भाषा के प्रयोग पर बल देते थे न की उसके रूमानी अन्दाज पर। कविता क्या है में उन्होने अपनी इस व्यावहारिकता का परिचय दिया है। 'कविता क्या है' में उन्होनें अपनी इस व्यावहारिकता का परिचय दिया है। उन्होनें कहा– ''कोई भाषा जितनी ही अधिक व्यापारों में मनुष्य का साथ देगी उसके विकास और प्रचार की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी।'' हिन्दी आलोचना में विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं– ''शुक्ल जी की भाषा इतनी निर्दोष तथ्यनिरुपिणी एवं प्राणवती है कि उस पर अलग से विस्तारपूर्ण विचार करने की आवश्यकता है।यहाँ पर इतना ही कह कर संतोष किया जा रहा है कि शुक्ल जी की भाषा भी वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक विचारों को वैज्ञानिक भाषा ही वहन कर सकती थी। दृष्टिकोण सम्बन्धी और विचारगत वैज्ञानिक की ही तरह उन्होने भाषा की वैज्ञानिकता भी अर्जित की थी।''[14]

सन्दर्भ –

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 15 मार्च, 1910 ई0 के अंक से (आ0 रामचन्द्र शुक्ल)
2. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 15 मार्च, 1910 ई0 के अंक से (आ0 रामचन्द्र शुक्ल)
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जनवरी, 1912 ई0 के अंक से (आ0 रामचन्द्र शुक्ल)
4. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 15 मार्च, 1910 ई0 के अंक से (आ0 रामचन्द्र शुक्ल)
5. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 15 मार्च, 1910 ई0 के अंक से (आ0 रामचन्द्र शुक्ल)

6. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 1912 ई0 के अंक से (आ0 रामचन्द्र शुक्ल)

7. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अप्रैल, 1910 ई0 के अंक से (आ0 रामचन्द्र शुक्ल)

8. लेखः उर्दू राष्ट्रभाषा 1909 ई0 के अंक से (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

9. वही

10. चिन्तामणि भाग–1, 1950 ई0 के ग्रंथ से (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), पृ0–145

11. वही, पृ0 175

12. वही, पृ0 166

13. भाषा और समाज (रामविलास शर्मा), पृ0 423

14. हिन्दी आलोचना (विश्वनाथ त्रिपाठी), पृ0 23